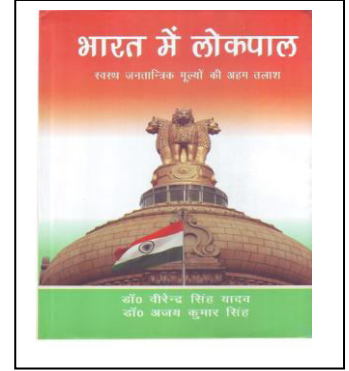


पुस्तक समीक्षा

भारत में लोकपाल : स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की अहम तलाश (संपा0): डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 अजय कुमार सिंह, अल्फा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2013, पृ0259 मूल्य रु0 650, ISBN 978-93-83292-13-4



लोकतंत्र में प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका दोहरी होती है एक तरफ तो वह समय पर काकदृष्टि रखता है जिससे नित्यप्रति की घटनाओं से अद्यतन रहे और दूसरी तरफ अनुभूतियों को शाब्दिक रूप दे जिससे आम व्यक्ति भी घटित से भिन्न हो सके। समीक्षा के लिए प्रस्तुत पुस्तक “भारत में लोकपाल : स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की अहम तलाश” में संपादक द्वय डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 अजय कुमार सिंह तथा इसके शोध पत्र लेखक गण अपनी प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका के साथ न्याय करते हुए प्रतीत होते हैं।

पुस्तक तीन खण्डों में 22 शोध पत्रों की एक संपादकीय कृति है। प्रथम खण्ड लोकपाल की पृष्ठभूमि तथा प्रतिफलन है इसमें कुल आठ शोध पत्र संकलित हैं। द्वितीय खण्ड में भारत में लोकपाल की भूमिका का मूल्यांकन करने के सन्दर्भ में 6 शोध पत्रों का संपादन संपादक द्वय द्वारा किया गया है। तृतीय खण्ड भारत में लोकपाल बनाम जनलोकपाल : चिंतन-चिंता के विविध सरोकार, 8 शोध पत्रों का संपादन है।

पुस्तक के प्रथम दो अध्याय स्कैण्डेवियन देशों के ओम्ड्समैन की संकल्पना से लेकर भारत में लोकपाल की संकल्पना तक की ऐतिहासिक प्रस्तुति का उत्कृष्ट नमूना है। ओम्ड्समैन के उद्भव के लिए चीन के किन राजवंश के इतिहास को 221 ई0पू0 तक खंगालने का प्रयास शोधपत्र लेखकों को गंभीर शोधार्थी की प्रभावशाली भूमिका में प्रतिष्ठित करता है। अध्याय तीन, चार, पांच, उन्नीस व बीस लोकपाल की अवधारणा से संबंधित हैं जिसमें लेखकों ने लोकपाल को उच्च सरकारी पदों पर आसीन व्यक्तियों द्वारा किये जा रहे भ्रष्टाचार की शिकायत सुनने तथा उस पर कार्यवाही करने के निमित्त सर्जित एक संवैधानिक पद माना है। इन अध्यायों का प्रतिपाद्य भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु लोकपाल की आवश्यकता को रेखांकित करना है। अध्याय छः व आठ में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक वर्ग संरचना को यदि राज्य का नियामक माना जाय तो कोई भी सरकार वर्ग सम्बन्धों के मध्य शक्ति एवम् हितों के संतुलन का सहज परिणाम होती है उस सरकार को आम आदमी के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए लोकपाल आवश्यक है। अध्याय आठ व अध्याय बारह लोकपाल की सीमाओं से सन्दर्भित है इसमें यह आशंका व्यक्त किया गया है कि जनलोकपाल से स्थापित लोकपाल भी एक मानव ही होगा, यदि जनता और संसदीय व्यवस्था में आये लोगों में कमियां हो सकती हैं तो जनलोकपाल भी त्रुटिरहित नहीं हो सकता।

नवम अध्याय में आम आदमी की प्रशासन के प्रति विश्वसनीयता बनाये रखने के हथियार के रूप में लोकपाल की भूमिका को रेखांकित करने में लेखकद्वय सफल रहे हैं। दसवें अध्याय में लोकपाल में प्रावधानित लोक शिकायत निवारण तथा भ्रष्टाचार की राशि के वसूली के प्रावधान उत्साहित करते हैं। ग्यारहवें अध्याय में इस तथ्य की स्थापना की गयी है कि कानून बनाने का अधिकार व्यवस्थापिका को अवश्य है किन्तु किसी भी व्यवस्थापिका को जनइच्छा के उल्लंघन का अधिकार नहीं होना चाहिए। अध्याय तेरह में लोकपाल को वक्त की जरूरत तथा चौदह में आकाक्षित लोकपाल व प्रावधानित सरकारी लोकपाल के मध्य अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास सराहनीय है।

अध्याय पन्द्रह, सोलह, सत्रह और इक्कीस में शोध पत्र लेखकों का दार्शनिक दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है। अध्याय पन्द्रह में लोकपाल को भ्रष्टाचार से मुक्ति की आशा के रूप में परिकल्पित किया गया है। सोलहवां व सत्रहवां अध्याय भ्रष्टाचार, लोकतंत्र तथा लोकपाल की राजनीति के अर्न्तजाल का सुन्दर प्रस्तुति है। अठारहवें अध्याय में लेखक अर्थव्यवस्था में कालाधन की बढ़ती भूमिका से चिंतित दीखते हैं। अध्याय बाईस लोकपाल तथा लोकायुक्त का सुन्दर समीक्षात्मक विवरण है।

पुस्तक सिद्धान्त, विज्ञान व दर्शन तीनों का समग्र रूप में प्रतिनिधित्व करती है। इस तथ्य के बावजूद कि पुस्तक में टंकण तथा वर्तनी संबंधी त्रुटियां मौजूद हैं तथात्मक दोहराव भी कहीं कहीं पाये जाते हैं फिर भी पुस्तक लोकपाल के सन्दर्भ में सुधिजनों की जीजीविषा शांत करने में सफल है। किसी भी सम्पादकीय कृति में संपादक की अपनी सीमायें होती हैं कुछ छोटी त्रुटियों के इतर संपादक द्वय अपनी भूमिका के साथ न्याय करने में सफल रहे हैं। पुस्तक की प्रस्तुति तथा कलेवर के लिए प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक, ज्ञानानुशीलन हेतु संग्रहणीय कृति है तथा भारतीय सामाजिक-राजनीतिक वांगमय के लिए अत्यंत उपादेय।

डॉ0 संतोष कुमार सिंह

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, चौरी बेलहा डिग्री कालेज, तरवा-आजमगढ़